# मैं बड़ा हूँ या छोटा, या कुछ भी नहीं?

नेमाराम चौधरी

किशोरावस्था विशेष रूप से स्वास्थ्य, विकास एवं अधिकारों के बारे में समझ बनाने तथा ज्ञान व कौशल क्षमता विकसित करने का काल होता है। साथ ही अपनी भावनाओं व सम्बन्धों को काबू में रख भावी जीवन कि के लिए तैयार होने का उपयुक्त समय भी होता है। इस दौरान किशोर-किशोरियों को सही मार्गदर्शन एवं भावनात्मक प्रोत्साहन की ज़रूरत होती है। एक ओर तो मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि बच्चों को इस समय किशोरावस्था के बारे में जागरूक किया जाए, वहीं दूसरी ओर समाज का बड़ा तबका इसे वर्जित मानते हुए शारीरिक परिवर्तनों व भावनात्मक पक्षों पर खुलकर बात न कर, मौन रहना पसन्द करता है। इस चुनौतीपूर्ण पक्ष पर विद्यालय में शिक्षण के दौरान कुछ कार्य, अनुभव मेरे भी रहे हैं। पिछले पाँच-छह सालों से मैं समावेशी स्कूली शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापन के कार्य से जुड़ा हुआ हूँ। इस दौरान मेरा ज़्यादातर शिक्षण कार्य 11 से 15 साल की आयु वर्ग के मुख्यतः ग्रामीण पृष्ठभूमि से जुड़े हुए बच्चों के साथ रहा है। चार वर्ष पूर्व विज्ञान-शिक्षण में पाठ्यपुस्तक के अनुसार कक्षा सात में नर जनन तंत्र एवं मादा जनन तंत्र पर पाठ योजना बनाते वक़्त यह उलझन रही कि जिन बच्चों को मानव शरीर की सामान्य समझ नहीं है, तो क्या उन्हें यह सिखाना ठीक होगा? दूसरा यह कि मेरे इस तरह के वार्तालाप में बच्चे अपने-आप को को कितना सहज महसूस करेंगे? दो-तीन दिन की कशमकश के बाद मुझे पुस्तकालय से एक किताब 'बिटिया करे सवाल' मिली जिसके आरम्भिक अध्यायों में कुछ इस तरह की जानकारी थी जिसे वे स्वतंत्र रूप से पढ़ सकते थे। अच्छी बात यह रही कि इस पठन सामग्री ने उनके जेहन में कुछ सवाल पैदा किए तथा साथ ही एक स्तर की जानकारी वे इससे प्राप्त कर पाए। इन सवालों के माध्यम से हम कक्षा-कक्ष में संवाद शुरू कर पाए तथा मानव शरीर की संरचना और कार्यों तथा शारीरिक बनावट एवं जनन पर बच्चे समझ बना पाए। इस शिक्षण अनुभव, संस्थागत प्रशिक्षण तथा विद्यालय की आवश्यकता ने कक्षा-कक्ष से हटकर किशोरावस्था पर नियमित रूप से बच्चों के बीच संवाद कायम करने के लिए मुझे प्रेरित किया। इसके लिए हमारी विद्यालय टीम ने एक पुरुष व एक महिला शिक्षक को इस कार्य की ज़िम्मेदारी प्रदान की तथा विद्यालय में एक किशोर-किशोरी मंच बनाने में सहयोग किया जो मुख्यतः उच्च-प्राथमिक कक्षाओं के छात्र-छात्राओं की जिज्ञासाओं तथा उनकी सामान्य समस्याओं व उलझनों पर ज़रूरत के मुताबिक कार्य कर पाए।

इस मंच पर बच्चे अपने सवाल खुलकर रखते हैं। अमूमन उनके इन सवालों का सीधा जबाव न देते हुए कहानी, वीडियो, पोस्टर तथा आपसी संवाद द्वारा उत्तर देने की कोशिश की जाती है। अब तक इस दिशा में कार्य करते हुए बच्चों एवं शिक्षकों के लिए किशोरावस्था से सम्बन्धित 30 से ज़्यादा पुस्तकें विद्यालय, पुस्तकालय में आ चुकी हैं। इन पुस्तकों का परिचय मंच पर बच्चों से करवाया जाता है तथा तत्पश्चात उन्हें पढ़ने के लिए दे दी जाती हैं। इस प्रकार की कोशिश इस आयु वर्ग में होने वाले शारीरिक, मानसिक एवं व्यवहारगत परिवर्तनों को समझने में मदद करती है। साथ ही उनकी उलझनों व समस्याओं पर का समाधान करने में दिशा प्रदान करती है। इस कार्य के लिए मासिक दो घण्टे बच्चों के साथ कार्य किया जाता है। पिछले चार सालों में अब तक 40 बैठकें बच्चों के साथ हो चुकी हैं एवं विद्यालय में अन्य शिक्षकों के साथ भी नियमित संवाद होता रहा है। इन बैठकों में मानव-शरीर संरचना, स्वास्थ्य एवं सन्तुलित भोजन, बच्चों का व्यवहार, सामाजिक मुद्दे जैसे भेदभाव, छुआछूत, चोरी एवं बालिका-अपहरण, खेल के मैदान में लड़के व लड़कियों का साथ नहीं खेलना, ग्रुपिंग (लड़के/लड़कियाँ, लड़कियाँ/लड़कियाँ, लड़के/लड़के), गाली-गलौज, सुरक्षा, तनाव व कुण्ठा, प्राथमिक उपचार, साफ़-सफ़ाई, माहवारी व अन्धविश्वास तथा सामाजिक मान्यताएँ आदि पर चर्चा की जाती रही है। इस पूरी कार्य योजना में बच्चे अब तक लगभग 100 सवालों पर संवाद कर पाए हैं। इस मंच के द्वारा विद्यालय में बालिकाओं के लिए कॉमन रूम तैयार हो पाया तथा ज़रूरत की चीज़ें जैसे पैड्स, कपड़े एवं डस्टबीन की समुचित व्यवस्था बन पाई। बालकों का भी समान रूप से ख़्याल रखने की कोशिश की जा रही है। कार्य के दौरान यह लगा कि विद्यालय की सभी प्रकार की समस्याएँ किशोरावस्था से जुड़ी हुई नहीं हो सकती हैं तथा यह मंच ही उनके समाधान का एकमात्र विकल्प है ऐसा नहीं होना चाहिए। इसके लिए हम सभा-स्थल में बच्चों के साथ मिलकर हर सप्ताह गुरूवार को बातचीत के द्वारा ऐसे मुद्दों पर निर्णय लेते हैं जैसे, पानी व भोजन को व्यर्थ बरबाद न करना,

विद्यालय की साफ़-सफ़ाई रखना, विद्यालय में लड़ाई-झगड़ा न करना या फिर कोई भी ऐसी सामान्य बातें जो विद्यालय के लिए आवश्यक हों।

बच्चों के सैकड़ों सवालों में से कुछेक की बानगी -

1. मैं किसी को नीचा दिखाने की कोशिश क्यों करता हूँ?
2. किसी लड़की के प्रति हमारे मन में अपनी माँ, बहन की इमेज क्यों नहीं बनती?
3. स्कूल में हम सब एक साथ होते हैं, गाँव में भेदभाव क्यों होता है?
4. घर का काम लड़की करती है, लड़के क्यों नहीं?
5. लड़की को ही माहवारी क्यों होती है? माहवारी का बच्चे बनने से क्या सम्बन्ध है?
6. किन्नर औरत है या पुरुष?
7. नशे की आदत क्यों बन जाती है? बार-बार तम्बाकू या बीड़ी का सेवन क्यों करते हैं?
8. लड़के व लड़कियाँ पास-पास क्यों नहीं बैठना चाहते हैं? जबकि छोटे होते हैं तब ऐसा नहीं होता है।
9. मुझे पढ़ना नहीं आता तो मेरा मज़ाक क्यों बनाया जाता है?
10. कोर्ट-मैरिज क्यों करते हैं? कई लोग दो-दो शादी क्यों करते हैं?

मुझे लगता है कि इस तरह की बातचीत का माहौल तथा किशोरावस्था के अनछुए पहलुओं पर संवाद बच्चों में स्वनिर्णय लेने, नेतृत्व क्षमता विकसित करने, शरीर के प्रति सजगता एवं लोकतांत्रिक मूल्यों पर समझ बनाने एवं भावी जीवन हेतु तैयार करने में सहायक है। इस दौरान बच्चों के साथ कई तरह के कार्य, अनुभव रहे हैं। मैं यहाँ कुछ का विशेष रूप से उल्लेख करना चाहूँगा।

**केस – 1 :** एक बालिका की अनियमित माहवारी होने के कारण उसे घर-पड़ोस के कहने पर लम्बे समय तक टोने-टोटके एवं बाबाओं के चंगुल में रहना पड़ा। बालिका ने मंच पर यह बात रखने का फैसला किया तो उसे समुचित सहयोग प्रदान कर माँ के साथ बात की गई एवं चिकित्सकीय परामर्श हेतु प्रोत्साहित किया गया तथा परिणाम लाभदायक रहे। उल्लेखनीय है कि इसी बालिका ने अपने बाल-विवाह का पुरजोर विरोध कर समाज को नई सोच के साथ चलने के लिए बाध्य किया। सवाल यह है कि कितनी बालिकाओं को ऐसा मंच समाज दे रहा है जहाँ वे अपने मन की बात रख पाएँ एवं उन्हें कोई समझ भी पाए?

**केस – 2 :** शारीरिक बदलाव के दौर में एक बच्चा इसलिए काफ़ी तनाव में था क्योंकि वह यह समझ रहा था कि मेरी छाती (स्तन) में गाँठ हो गई है एवं दर्द भी रहता है तथा यह कोई बीमारी है। बच्चा यह जानकारी रखता था कि कैंसर में कुछ-कुछ ऐसा हो जाता है। अतः उसे यह समझाया गया कि वह हो सके तो अपनी उम्र के बच्चों से पूछताछ कर सकता है कि क्या उन्हें भी ऐसा हुआ है? तथा समस्या है तो क्यों नहीं इसके लिए डॉक्टर से सम्पर्क करें?

**केस - 3 :** अक्सर बच्चों के बारे में यह बात होती है कि स्वभाव से उग्र हैं, कहना नहीं मानते हैं। लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह है कि ऐसा वे क्यों करते हैं? यह जानना ज़रूरी है और क्या सभी बच्चे ऐसा करते हैं? शायद हम इससे सहमत न हों। घर में दादा-दादी के साथ रहने वाले विद्यालय के एक बच्चे ने अपने हाथ की नसों को काटने का असफल दुस्साहस किया। व्यक्तिगत बातचीत करने पर यह समझ आया कि वह अपने प्रति घरवालों, साथियों तथा परिवेश में हो रहे लगातार रूखे व्यवहार से कुण्ठित था तथा बार-बार होने वाली सांवेगिक अस्थिरता से दुखी था। फलतः इस तरह की घटना को अन्तिम समाधान माना। चिन्ता इस बात से है कि हम पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर फैसले लेने में जरा भी हिचकिचाते नहीं हैं तथा बच्चों के ऐसा करने का कारण जानने में रुचि कम लेते हैं।

**केस – 4 :** चार बहनों में सबसे बड़ी तथा माता-पिता को सब्ज़ी का ठेला लगाने में मदद करने वाली कक्षा आठ में क्रमोनत हो चुकी बालिका विद्यालय छोड़ना चाहती थी। क्योंकि उसे पिछले दो-तीन सालों से पेट में दर्द होता था। लेकिन घरवालों ने चिकित्सकीय परामर्श लेने में कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई। वह परेशान इस बात से हो रही थी कि विद्यालय में साथियों तथा अध्यापकों के सामने रोज़ तमाशा नहीं बनना चाहती थी (बालिका के कहे अनुसार)। कमाल की बात यह है कि इतना होते हुए भी उसने यह कभी महसूस नहीं होने दिया, चाहे वह खेल का मैदान हो या कोई अन्य विद्यालय के कार्य। मतलब साफ़ है कि ड्रॉपआउट के अनेक कारण हो सकते हैं। पर, छोटी-सी लगने वाली बात किशोर-किशोरियों को स्वनिर्णय लेने से रोक नहीं पाती है।

**केस – 5 :** कक्षा सात व आठ के बालकों व बालिकाओं में किसी बात को लेकर मतभेद था तथा सामूहिक संवाद काफी कम था। ऐसे में खेल के मैदान में एक साथ न खेलना तथा कक्षा-कक्ष शिक्षण में व्यवधान होना तय था। हर साल की तरह विद्यालय में खेल-सप्ताह का आयोजन होना था। बच्चों में बिखराव साफ़ नज़र आ रहा था। मुझे विद्यालय खेल समिति में होने के नाते इनका खेल टाइम-टेबल बनाना था। इसके लिए अपनी ओर से कबड्डी की बारह टीम बनाने के बजाय बच्चों को इस बात के लिए स्वतंत्र छोड़ा गया कि

आप एक दिन में अपनी-अपनी टीम बनाएँ तथा यह बताया गया कि बेहतर होगा कि आप टीम में लड़के एवं लड़कियों को बराबर-बराबर जगह दें। फलस्वरूप यह हुआ कि आशा के विपरीत बेहद शानदार एवं ऊर्जा से भरपूर खेल देखने को मिला तथा छह लड़के कैप्टन एवं छह लड़कियाँ कैप्टन बनीं। फाइनल मुक़ाबले में एक साथ बैठकर लड़के व लड़कियाँ अपनी टीम का हौसला बढ़ा रहे थे तथा लड़कियों की कप्तानी में लड़के आनन्दित महसूस कर टीम के लिए खेल रहे थे। कहने का मतलब यह है कि शिक्षक होने के नाते आपके पास कई अवसर आते हैं। उन्हें आप किस तरह बच्चों के विकास में भुनाते हैं यह पूर्णतया आप पर ही निर्भर करता है। खेल का मैदान दूरियों को मिटाता है।

मैं यह तो नहीं कह सकता कि रामबाण औषधि के रूप में सभी समस्याओं का उत्तर इस मंच पर उपलब्ध है। पर इतना ज़रूर है कि समय के मुताबिक इस शैक्षिक परिदृश्य को बदलने हेतु इस तरह के नवाचार करने की ज़िम्मेदारी विद्यालयों की बनती है। हमें इस बात से सन्तोष मिलता है कि बाल केन्द्रित, समावेशी व सुलभ शिक्षा की ओर यह प्रयास सहायक बन रहा है। इस दिशा में यूनिसेफ के सहयोग से कस्तूरबा गांधी आवासीय विद्यालयों, केन्द्रीय विद्यालयों एवं नवोदय विद्यालयों में कार्य किया जा रहा है। यही नहीं एनसीईआरटी भी इस दिशा में किशोरावस्था को पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाने की पहल कर चुका है। लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि शिक्षक का अहम रोल यहाँ होता है क्योंकि उसे निष्पक्ष एवं परिपक्व होकर बच्चों के सामने अपने नैतिक मूल्यों की कसौटी पर खरा उतरना पड़ता है जो समाज की मुख्यधारा में बहुत कम देखने को मिलता है। पर यह मुश्किल नहीं है, इसे किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था को अत्यन्त कठिन, तनाव एवं तूफान की अवस्था माना है परन्तु इस तरह के प्रयासों से क्या इसे थोड़ा कम कठिन एवं सहज बनाया जा सकता है? यह इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि क्योंकि बच्चा जब छोटा होता है तो उसे माँ-बाप का सर्वाधिक सान्निध्य प्राप्त होता है लेकिन बढ़ती आयु के साथ ज़्यादातर बच्चों से यह रिश्ता थोड़ा कम होने लग जाता है या यों कहें कि उनसे दूरी बढ़ती जाती है। तो क्या अध्यापक होने के नाते संवेदनशील होकर उन्हें सम्बल प्रदान कर सकते हैं वह भी उस समय जब उन्हें जीवन में सबसे ज़्यादा पालकों की या उनकी भावनाओं को समझने वाले की ज़रूरत होती है। बच्चों के व्यवहार पर काम करने वाली संस्था मिशन जीनियस माईड के प्रमुख वक्ता के अनुसार, शब्दों का असर परमाणु बम से ज़्यादा होता है। वह यह कहते हैं कि अगर किसी बच्चे को बार-बार यह कहा जाता है कि तुम आलसी हो और तुमसे कोई काम ठीक से नहीं होता है तो बेशक वह आलसी भी हो जाएगा तथा काम भी ठीक से कर पाने में समर्थ होगा है। किशोरावस्था में विशेषतया ऐसा ज़्यादा होने की सम्भावना है। स्पष्ट है कि ऐसे कितने ही शब्दों का प्रयोग बच्चों के लिए भूलवश या गुस्से में उनके परिवेश में किया जाता है। यहाँ पर माँ-बाप को समझना होगा कि वह अनजाने में ऐसा कई बार कर देते हैं, तो क्या उन्हें यह ज्ञात भी है? क्या वह ठीक कर रहे हैं? इसी को ध्यान में रखते हुए विद्यालयों में माँ-बाप को अभिभावक-शिक्षक बैठक में यह बताया जा सकता है। यह और भी महत्त्वपूर्ण है कि बच्चों के साथ विद्यालय में हो रहे किशोरावस्था पर कार्यों के बारे में परिपक्वता के साथ उन्हें बताया जाए। हम इस विषय में बच्चों की माताओं के साथ अलग से बैठक करने की कोशिश भी करते हैं ताकि माताओं की भागीदारी को भी बच्चे के विकास में सुनिश्चित किया जा सके।

सबसे ज़रूरी बात यह है कि एक ओर तो किशोरावस्था के परिवर्तनों के दौर से बच्चा गुजर रहा होता है तथा दूसरी ओर वह इतना परिपक्व हो जाता है कि समाज में अपनी पहचान बनाना चाहता है। वह अपने विचार बड़ों के साथ रखता है तो हम कहते हैं कि अभी तो तुम छोटे हो और जब कुछ बचपना दिखाता है तो उसे यह सुनना पड़ता है कि इतने बड़े हो गए हो, कब सुधरोगे? असल बात तो यह है कि हम उन्हें उलझन में डाल देते हैं कि वे यह समझ नहीं पाते कि 'मैं बड़ा हूँ या छोटा, या कुछ भी नहीं।'

***आभार :*** *मैं उन सभी साथियों का आभार प्रकट करना चाहूँगा जिन्होंने मुझे कार्य करने एवं इसे लिखने के दौरान सराहनीय सहयोग प्रदान किया।*

**नेमाराम चौधरी** पिछले छह साल से अज़ीम प्रेमजी स्कूल, टोंक, राजस्थान में विज्ञान विषय पढ़ा रहे हैं। वे किशोरावस्था पर पिछले चार साल से कार्य कर रहे हैं। इसके अलावा विद्यालय में प्राथमिक चिकित्सा मुहैया करवाने में मदद करते हैं। इस स्कूल में आने से पहले वे 4 साल तक महाविद्यालय में रसायनविज्ञान का अध्यापन कर रहे थे। उनसे nemaram.choudhary@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।